हिन्दी उपन्यास : नारी विमर्श

संपादक
डॉ० शोभा वेरेकर

अभय प्रकाशन, कानपुर

ISBN : 978-93-80719-06-1

पुस्तक : हिन्दी उपन्यास : नारी विमर्श

संपादक : डॉ० शोभा वेरेकर

प्रकाशक : अभय प्रकाशन, 6A/540, आवास विकास
हंसपुरम् कानपुर–208 021
Mo. : 09451877266, 09305301995

संस्करण : प्रथम 2010

मूल्य : 360.00

शब्दसज्जा : विष्णु ग्राफिक्स, गल्ला मण्डी
नौबस्ता, कानपुर, मो० 08009017637

मुद्रक : मधुर प्रिण्टर्स
किदवई नगर, कानपुर

जिल्दसाज : तवारक अली, पटकापुर, कानपुर

HINDI UPANYANS : NARI VIMARSH

By : Dr. Shobha Verekar

Price : Rs. Three Hundred Sixty Only

9.

मध्यवर्गीय नारी की निश्चय-अनिश्चय भरी जिन्दगी

– डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र

तत्त्वमसि के बाद 'कुछ छूट जाता है' जया जादवानी का दूसरा उपन्यास है जिसमें मध्यवर्गीय नौकरी शुदा ऋतु की आपबीती कहानी है। जिसे जादवानी ने विचार, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से बिल्कुल नए ढंग से गढा है। वर्ष २००४ में प्रकाशित लगभग सौ पृष्ठों के इस उपन्यास की कथा ऋतु के इर्द-गिर्द घूमती है। उसके पूर्व पति पंकज, पुत्री संजना, वर्तमान पति रवीन्द्र और सहेली मनीषा के आपस के संवादों के बीच कहानी समाप्त हो जाती है। इसमें नारी मन के विभिन्न भावों और विचारों की परतों को लेखिका ने बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है। इसके साथ ही उन्होंने जीवन के अनछूए तारों को भी झनझनाया है। मनुष्य जिन्दगी में बहुत कुछ समेटना चाहता है फिर भी कहीं न कहीं कुछ न कुछ छूट ही जाता है। इसी महत्वपूर्ण मुद्दे को पकड़ कर जादवानी ने उपन्यास का ताना-बाना बुना है। अत्याधुनिक युग में नई की दौड़ में पुरानी की कचोट बनी रहती है और इसी मकडजाल में इंसान उलझ-पुलक कर रह जाता है।

एक मध्यवर्गीय परिवार में जन्मी-पत्नी-बढ़ी ऋतु अपने विधवा माँ की सातवीं संतान है। वह घर की हालत और माँ की इच्छा पूर्ति के लिए अपने से दस वर्ष बड़े पंकज के साथ शादी के लिए हाँ कर देती है। जोकि उसके बड़े भाई के कार्यालय में काम करता है। ऋतु बैंक में नौकरी करती है। वह चाहती तो शादी से मना भी कर सकती थी लेकिन उसने ऐसा नहीं किया क्योंकि हमारे निम्न एवं मध्यवर्गीय भारतीय समाज में नारी की जिन्दगी उसकी चाहतों से तय नहीं होती। शादी के पन्द्रह दिनों के बाद दोनों मसूरी जाते हैं जहाँ पर उन्हें एक-दूसरे को शरीरिक और मानसिक रुप से जानने-पहचानने का अवसर मिलता है। पंकज को लगता है कि "देह सिर्फ यह नहीं जो बाहर से दिखाई देती है, देह के भीतर एक अदभूत जादुई दुनिया होती है, जो किसी तिलस्म की तरह खुलती है, जिसके

रहस्यों को भेदने का बीड़ा उठाकर आप उसके भीतर जाते हैं और कभी बाहर नहीं आ पाते....। (पृष्ठ-३७) यहाँ लेखिका ने नारी के देह आकर्षण का बड़ा सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

समय के साथ पंकज को अपनी शारीरिक अस्वस्थता एवं आन्तरिक कमियों का पता चलता है। इसके बाद वह मन ही मन ऋतु की दूसरी शादी की बात सोचकर उसे शादी के लिए राजी भी कर लेता है। इतना ही नहीं वह स्वयं समाचार-पत्र में शादी का विज्ञापन भी देता है, "एक सुन्दर, सुशील स्मार्ट, उम्र ४२ वर्ष, रंग गेहुआं, लंबाई ५ फीट ५ इंच, वजन ६२ ग्राम, बैंक में सर्विस करती विवाहित स्त्री के लिए, आकर्षक-योग्य-समझदार, अकेले रहते पुरुष की जरूरत है।"(१२) और कालान्तर में विधुर रवीन्द्र से अपनी पत्नी की शादी के लिए बात भी करता है।' "आप हंसेंगे मि० रवीन्द्र। अगर मैं आपको बताऊँ, आप नवें हैं।" बाकी के आठ का क्या हुआ ?" "कुछ ने ऋतु को पसन्द नहीं किया, कुछेक को ऋतु ने। उसने कहा था, वह दो चांस और लेगी। दस के बाद बस।"(१५) इसके बाद पंकज मि० रवीन्द्र का मन पाकर उन दोनों की मुलाकात एक रेस्टोरेंट में कराता है।" भीड में खोया-खोया सा वह पारदर्शी-स्वप्नीला-मैच्योर चेहरा इकहरा बदन, कटे हुए बाल.......। न पीला रंग मुझे इससे पहले इतना सुन्दर लगा था, चालीस के आस पास की कोई स्त्री.........।"(१६)

एक दूसरे को देखने के बाद ऋतु और मि० रवीन्द्र के अंदर रोमांश के वही भाव पैदा हुए जो कि औरत-पुरुष को तरूणाई में होते हैं। जहाँ मन कलप्ना की ऊँची उड़ाने भरने लगता है और परिवार, समाज और परंपरा के सारे बंधन ढीले पड़ जाते है। रोमांस के विषय में वरिष्ठ कथाकार राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि "महादेवी वर्मा के शब्द उधार लूं तो रोमांश सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह' है। रोमांस ह्दय की वह मुक्तावस्था है जहाँ वर्जनाओं और अंकुशों के कारागार इस तरह टूट जाते हैं कि आपके सपने जमीन आसमान नापने लगते हैं और नैतिक-अनैतिक कुछ भी नहीं रह जाता।" (हंस-सितम्बर ६ पृष्ठ-२)

रोमांस की इन्हीं क्षणों में ऋतु विधुर रवीन्द्र की तरफ आकर्षित होती है लेकिन संजना के विषय में सोचकर सिहर उठती है कि वह क्या कहेगी ? ऋतु इन उलझनों के बीच आखिरकार रवीन्द्र से कोर्ट मैरेज करती है लेकिन वह इस प्रकार की शादी से खुश नहीं है। यहाँ वह परंपरा के मोह से ग्रस्त होकर गाजे-बाजे, धूम-धड़ाके और विधिवत मंत्रोचार के साथ शादी करना चाहती है क्योंकि रजिस्टर पर दस्तखत की शादी कभी भी टूट सकती है। परंपरागत रूप से सोचा जाए तो सामाजिक विवाह भारतीय पारिवारिक संस्कृति की सुन्दरताओं

का अनुपम खजाना है। जो कि जीवन मूल्यों के मानवीय पक्ष को उजागर करता है। नई और पुरानी सोच के बीच उलझती हुई ऋतु कहती है कि "टूटने में एक क्षण से भी कम वक्त लगता है। तब यह अग्नि भी आपको बचा नहीं सकती। सिर्फ यह जगह बदल लेती है। कभी बाहर जलती थी, फिर अन्दर जलने लगती है। यूं अगर एडवांस होकर सोचा जाए तो हम बगैर शादी के भी रह सकते थे।"(७)

इस समय ऋतु को मात्र एक बात की चिंता थी कि उसकी पुत्री संजना उसके बारे में क्या सोचेगी ? शादी के बाद जब संजना ने फोन पर कहा कि "मैंने पापा से बात की थी, अभी थोड़ी देर पहले वे रो रहे थे।" आगे उसने कहा कि "डोंट काय मम्मा। आय एम विद यू।"(११) यहाँ ऋतु का मन अजीब सा हो उठता है और उसके मानस पटल पर हले विवाहित जीवन की रील घूम उठती है। यह है हमारे अतीत और वर्तमान की लड़ाई जिससे कि मनुष्य सदैव लड़ता रहता है जो कि उसे कभी चैन से जीने नहीं देता। नारी जीवन की कुछ अजीब स्थिति है कि उसे अपने पैरों पर खड़ी होने के बावजूद एक सहारे की जरूरत होती है। जिसके बिना कि उसका जीवन अधूरा होता है। यह बात पुरुष के लिए उतने कारगर ढंग से लागू नहीं होती। दूसरी शादी के बाद ऋतु पंकज और अपनी बेटी को भूल नहीं पाती। जब संजना फोन पर पूंछती है, "मम्मा कोई ऐसा भी बन्धन होता है, जो कभी न टूटे.....।" तब ऋतु कहती है "होता है। माँ-बच्चों का। बाकी सब झूठ है।"(११) सचाई यह कि धीरे-धीरे बाजारस्वाद के इस युग में इन संबंधो में भी दरार आनी शुरु हो गई है।

शादी होने के बाद ऋतु और रवीन्द्र दोनों अतीत को एक साथ जीते हैं जहाँ ऋतु को शादी के बाद रवीन्द्र में परफ्यूम के पीछे जानवर की गन्ध आती है वहाँ रवीन्द्र अपनी पहली शादी की दीवनगी सताती है और वह कहता है "कहाँ गई शादी के बाद वह दीवानगी, वह जुनून, वह बेहिस व्याकुलता-सारी चीजें फिर एक आदत में बदलती चली गई। पहली रात उसे छते मैं जिस अद्भूत आश्चर्य और रोमांच से गुजरा, उसे मैं रोज पाना चाहता पर वह सम्भव नहीं था। बाद के सालों में मैंने देखा कि प्रेमिका से पत्नी बनते ही औरत कितनी बदल जाती है?" (१६) लेखिका ने जहाँ एक तरफ ऋतु के विचारों के माध्यम से मनुष्य की भोगवादी प्रवृत्ति को दर्शाया है वहीं दूसरी तरफ रवीन्द्र के द्वारा मनुष्य की प्रेमानुभूति एवं व्यावहारिक जीवन की अनुभूतियों का। रोमांस की सहज अनुभूति के कारण रवीन्द्र आधुनिक वेश-भूषा से सजी सुन्दर चालीस की उम्र में भी ऋतु को देखकर मुग्ध हो जाता है। लगभग सौ प्रतिशत यह बात सही है कि पुरुष के लिए नारी देह का आकर्षण प्रमुख होता है। दिनकर ने उर्वशी में नारी सौन्दर्य में देह के

आकर्षण को स्वीकार करते हुए उसे आधात्मिकता से जोड़ दिया है।" देह प्रेम की जन्म-भूमि है, पर, उसके विचरण की, सारी लीला-भूमि नहीं सीमित है रूधिर-त्वचा तक।।"(४७)

ऋतु पंकज के साथ विताए हुए लमहों को याद करती हुई कहती है "पंकज, इस देह के सिवा कुछ और भी है मेरे पास वह नहीं देखते तुम" ऋतु के इस कथन कहता है- "पर सबसे सुन्दर तो देह है न।" मीडिया और बाजारस्वाद के इस युग में नारी देह का आकर्षण कुछ इस कदर बढ गया है कि विचारों की सुन्दरता गायब होती जा रही है।

जब संजना अपनी माँ के नए घर में आती है तो उसे लगा कि मम्मा कितनी सिकुडी-सिमटी लग रही थी अपने आपमें ? उसके मन में अजीब सी अनुभूतियाँ होती है कि क्या रवीन्द्र के साथ वे वैसा रह पाएंगी ? जैसे कि पापा के साथ रहती थी। वह सोचती है "जिस माँ को मैं आज तक देखती आई हूँ-मेरी ही जरूरतों के प्रति चाक-चौकन्द.......वो आज कितनी बंटी-बंटी सी लग रही थी. .. एक टुकड़ा किधर-एक किधर.......कोई भूल न हो जाए.......कोई चूक न हो जाए. .... किसी धार पर चलने का सा भाव...... ।"(७१-७२) यहाँ ऋतु का जीवन दो खानों में बंट गया है वह दोनों को जोड़ने में लगी हुई है। पंकज के वॉयपास सर्जरी का समाचार सुनकर वह तुरन्त चेन्नई के लिए खाना हो जाती है। इस बात को जानकर संजना को संतोष का अनुभव होता है क्योंकि वह अपने पापा से बेहद प्यार करती है।

अंत में ऋतु सोचती है कि "समाज, संस्कृति और परंपरा जो मेरे भीतर डालती रही है, मैं उसी की नियति हूँ। पर इसके अलावा मैं क्या हूँ ? मैं अपनी बनी हुई इमेज के सिवा क्या हूँ ? क्या हमेशा एक ही पीड़ा से गुजरना मनुष्य की अनिवार्य नियति है ? क्या शून्यता का बोध यह साबित नहीं करता कि आप अपने घर में नहीं हैं ?"(७६-८०) ऋतु के जीवन में आए दो पुरुष उसके दो कालखण्डों को संकेतित करते हैं। अभी एक तीसरा कालखण्ड उसे जीना है। इसे लेकर उसके मन में ऊहापोह की स्थिति बनी हुई है। रवीन्द्र से शादी करने के बाद भी उसे अपना जीवन अधूरा सा लगता है। ऋतु के अतीत और वर्तमान की साक्षी मनीषा ने उससे पूछा "क्या तू अपने-आपको बंटा-बंटा महसूस कर रही है?.....तो ऋतु ने कहा "मनीषा किसी को भी सम्पूर्णता से देखना हो तो उसके बाहर आना जरूरी है। मैं अपने भीतर से अपने आप को नहीं देख सकती ?"(८५)

बदलते समय और परिवेश के साथ मनुष्य अंदर-बाहर की लड़ाई से कुछ ज्यादा ही जूझ रहा है। नारी के समक्ष घर-परिवार, समाज-संस्कृति को लेकर

अनेक उलझनें हैं विशेषकर नौकरी शुदा नारी के लिए और भी क्योंकि वह सामान्य नारी की भांति चीजों से समझौता नहीं कर पा रही है। मनीषा ऋतु की उलझन भरी जिन्दगी को देखकर कहती है कि "ऋतु ऐसा सभी के होता है, तू अकेली नहीं है। पर हम औरतें अपनी इस पीड़ा को किसी से कहती नहीं। सोच तो, हम कितनी वर्जनाओं में जीते हैं ? क्या दैहिक संबंधों को लेकर कोई दूसरा रिश्ता बनाया जा सकता जो कमअजकम शादी जैसे बंधन से छुटकारा दे दे। क्या इस सामाजिक संरचना में कुछ भी बचाया जा सकता है, कोई सम्बन्ध कोई चीजे या अपना आप ही ....?(८५) जादवानी ने आज के समय और समाज की नब्ज को परखते हुए इस बात का अनुभव किया है कि अब स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की कोई नई आधाशिला रखनी होगी और कुछ नए मूल्य भी निर्धारित करने होगे आधुनिक सामाजिक व्यवस्था को अब और अधिक दिन पुराने मूल्यों पर नहीं चलाया जा सकता। शादी के मानदण्डों को भी बदलना होगा। पहले की भांति चीजें और संबंध हम पर आरोपित किए जा रहे है। जब नारी अपने जीने की अर्थवता किसी पुरुष में ढूंढने लगती है तो वह उसी क्षण अपने-आप को किसी यातना में फेंक देती है।

इक्कीसवीं सदी की देहरी पर भी नारी की जिन्दगी उसकी चाहतों से तय नहीं हो पा रही है। उसकी इच्छाओं और आशाओं के बीच परिवार, परंपरा, समाज, संस्कृति, नैतिकता आर्थिक संकट आदि न जाने कितनी दीवारें खड़ी हो जाती हैं। आज वह एक रास्ते को छोड़कर दूसरे रास्ते पर भाग रही है लेकिन वह पहले को भूल नहीं पा रही है। नारी जीवन की असलियत को बयां करती हुई मनीषा कहती है, 'वैसे भी ऋतु, हम एक साथ विश्वास-अविश्वास में जीते हैं, हम एक साथ प्रेम और घृणा में जीते हैं, पर हमें हमेशा चुनना तो एक को ही पड़ता है, दूसरे की लालसा हमारे भीतर मजबूती से पंजे गडाए होती है। एक व्यक्ति की जिन्दगी, अगर वह शिद्दत से जिए, कई जिन्दगियाँ जीता-मरता है एक साथ. ...."(८१)

प्रस्तुत उपन्यास में जयाजादवानी ने भारतीय संस्कृति, परंपरागत पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों से जूझती हुई मध्यवर्गीय नौकरीशुदा नारी की जीवन गाथा को बनते-बिगड़ते नए मूल्यों की बीच परखा और जाना है। जिसमें घूटन-टूटन मजबूरी और संघर्ष भरी ऋतु की जिन्दगी में रोमांस के छीटे भी हैं। बीच-बीच में जीवन संदर्भों के नवीन संदर्भों के नवीन विचार-बिन्दु भी प्रस्तुत किए गए है, जैसे कि मैं जो भी हूँ अपनी मानवीय रचना हूँ और अपने पागलपन से अधिक कुछ नहीं हूँ। 'किसी और तरह से जीने की चाह ही आपसे सारे रास्ते तय

करवाती है। 'किले के भीतर किला', मेरी जरूरतका चेहरा कितना अस्पष्ट है' आदि। ये विचार जीवन की अनुभूतियों से निचूर कर आए हैं जिससे कि उपन्यास को एक नई ताजगी मिलती है और निश्चित रूप से पाठकों के लिए प्रेरणा दायक भी हैं। उपन्यास के पात्र अधिकांश रूप से अपने आपसे बात करते हुए नजर आते है। जोकि प्रायः अतीत और वर्तमान में जीते हैं। उपन्यास की शैली अलग ढंग की है। एक प्रमुख विचार के बाद पात्र का नाम एवं उसके कथन का स्वरूप अनवरत चलता है। बीच-बीच में दो पात्रों के बीच संवाद भी हुए हैं जहाँ स्त्री-पुरुष के जीवन यथार्थ के साथ रोमांस और वात्सल्य के भाव उभर कर आए हैं। जिसे कि लेखिका ने आधुनिक अंग्रेजी मिश्रित हिंदी की बोलचल की सहज और सुगम भाषा में प्रस्तुत किया है। उपन्यास का सार यह कि जिंदगी में चाहे जितना भी कुछ समेटो लेकिन कुछ न कुछ छूट जाता है। निदा फाजली से कुछ शब्द उधार लूं तो यों कहना पड़ेगा कि-

"कोशिश के बावजूद यह उल्लास रह गया,
हर काम में हमेशा कोई काम रह गया।"